UP Board Solutions for Class 9 Sanskrit Chapter 3 बन्धुत्वस्य सन्देष्टा रविदासः (गद्य – भारती)

पाठ-सारांश

परिचय एवं जन्म-रविदास को स्वामी रामानन्द के बारह शिष्यों में से एक माना जाता है। उनका नाम रैदास लोक-प्रचलित है। उनका जन्म काशी के मण्डुवाडीह ग्राम में विक्रमी संवत् 1471 में माघ मास की पूर्णिमा तिथि को रविवार के दिन हुआ था। रविवार को जन्म होने के कारण ही उनका नाम रविदास' पड़ा।

तत्कालीन परिस्थितियाँ-रविदास के समय में भारतवासी यवनों के शासन से पीड़ित थे और भारतीय राजा आपस में लड़ रहे थे। भारतवासी सभी तरह से उपेक्षित थे और विद्यमान सम्प्रदायों में। धार्मिक द्वेष बढ़ रहा था। ऐसी दशा में दु:खी होकर महात्माओं ने ईश्वर को ही शरण मानते हुए लोगों को ईश्वर की व्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता समझायी। भारतवासी उन्हीं लोगों का सन्त कहकर आदर करते थे, जो दीन-दुःखियों की सेवा में तत्पर तथा दलितों और शोषितों के प्रति दयावान थे।

जीवन-प्रणाली एवं सिद्धान्त-रविदास अपने कर्म में लगे रहकर दु:खी लोगों के प्रति दयावान बने रहे। वे धर्म के बाह्य आचरणों को परस्पर द्वेष का कारण मानते थे। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा यह उनका विचार था। रविदास किसी पाठशाला में नहीं पढ़े। उन्होंने गुरु की कृपा से संसार की क्षणभंगुरता एवं ईश्वर की नित्यता और व्यापकता का जो ज्ञान प्राप्त किया, उसी का लोगों को उपदेश . दिया। | रविदास ने न किसी जंगल में जाकर तपस्या की ओर न ही किसी पर्वत की गुफा में बैठकर साधना की। वे जल में रहते हुए भी जल से भिन्न रहने वाले कमल-पत्र की तरह संसार के बन्धन से मुक्त थे। उनका विश्वास था कि अपना कर्म करते हुए घर पर रहकर भी ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। वे ईश्वर को मन्दिरों, वनों और एकान्त में ढूंढ़ने की अपेक्षा अपने हृदय के भीतर ढूंढ़ना अधिक उचित समझते थे। वे ईश्वर की प्राप्ति में अहंकार को सबसे बड़ा बाधक मानते थे। यह मैं करता हूँ, यह मेरा है-इस भ्रम को छोड़कर ही ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है; ऐसा उनका मानना था।

निर्गुणोपासक-रविदास, कबीरदास, नानक आदि महात्माओं ने यद्यपि निर्गुण ब्रह्म की उपासना की, फिर भी उन्होंने सगुणोपासकों से कभी द्वेष नहीं किया। वे निराकार ब्रह्म के साक्षात्कार के साथ-साथ दु:खियों, दीनों, दरिद्रों और दलितों के प्रति भी अपने मन में अगाध प्रेम रखते थे।

रविदास दीनों, दरिद्रों और दलितों में ईश्वर के दर्शन करते थे। उनके विचार में ईश्वर ने सबको समान बनाया है; अतः सभी आपस में भाई-भाई हैं। मनुष्य जाति में जाति, वर्ण और सम्प्रदाय के भेद : मनुष्य ने बनाये हैं। वे कहते थे-'हरि को भजे, सो हरि का होई।' हरि के भजन में जाति या वर्ण नहीं पूछा जाता है। उन्होंने राष्ट्र की अखण्डता और एकता को बनाये रखने का सदैव प्रयत्न किया।

स्वर्गारोहण-रविदास 126 वर्ष की आयु में संवत् 1597 वि० राजस्थान के चित्तौड़गढ़ नामक स्थान पर परमात्मा में विलीन हो गये थे। वे अपने यशः शरीर से आज भी जीवित हैं।

गधाशों का सन्दर्भ अनुवाद

(1) परमोपासकस्य रामानन्दस्य द्वादशशिष्या आसन्निति भण्यते। तेषु शिष्येषु रविदासो लोके रैदास इति संज्ञया ख्यात एकः शिष्यः आसीदित्युच्यते। रविदासस्य जन्म काश्यां माण्डूरनाम्नि (मण्डुवाडीह) ग्रामे एकसप्तत्युत्तरचतुर्दशशततमे (1471 वि०) विक्रमाब्दे माघमासस्य पूर्णिमायान्तिथौ रविवासरेऽभवत्। रविवासरे तस्य जन्म इति हेतोः रविदास इति नाम जातमित्यनुमीयते। |

शब्दार्थ-
भण्यते = कहा जाता है। संज्ञया = नाम से।
ख्यात = प्रसिद्ध।
आसीत् इति उच्यते = थे, ऐसा कहा जाता है।
हेतोः = कारण से।
जातमित्यनुमीयते (जातम् + इति + अनुमीयते) = हुआ, ऐसा अनुमान किया जाता है।

सन्दर्भ
प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तके ‘संस्कृत गद्य-भारती’ में संकलित ‘बन्धुत्वस्य सन्देष्टा रविदासः’ शीर्षक पाठ से अवतरित है।

संकेत
इस पाठ के शेष गद्यांशों के लिए भी यही सन्दर्भ प्रयुक्त होगा।] प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश में रविदास के शिष्यत्व एवं जन्म की बात कही गयी है।

अनुवाद
महान् उपासक रामानन्द के बारह शिष्य थे, ऐसा कहा जाता है। उन शिष्यों में रविदास संसार में रैदास नाम के प्रसिद्ध एक शिष्य थे, ऐसा कहा जाता है। रविदास का जन्म काशी में | मांडूर (मण्डुवाडीह) नामक ग्राम में विक्रम संवत् 1471 में माघ मास की पूर्णिमा तिथि को रविवार के दिन हुआ था। रविवार के दिन उनका जन्म हुआ, इस कारण ‘रविदास’ यह नाम हुआ, ऐसा अनुमान किया जाता है।

(2) पञ्चदश्यां शताब्दी भारतीयजनजीवनमतीवक्लेशक्लिष्टमासीत्। यवनशासकैराक्रान्तो देशो, मिथः कलहायमाना भारतीयाः राजानः दुःखदैन्यग्रस्ताः, सर्वथोपेक्षिताः भारतीयजनाः विविधधमानुयायिषु प्रवृत्तो विद्वेषो जातिवर्णेषु विभक्तो भारतीयसमाज इति देशदशां दर्श दर्श दूयमानहृदयाः तदानीन्तनाः महात्मानः सन्तश्चेश्वर एव शरणमिति मन्यमाना ईश्वरम्प्रति समर्पिताः सन्त परमात्मनो व्यापकत्वं तस्य सर्वशक्तिमत्त्वञ्च बोधयति स्म। |

शब्दार्थ-
अतीव = अत्यधिक।
क्लेशक्लिष्टम् = दुःखों से दुःखी।
मिथः = आपस में।
कलहायमाना = कलह करते हुए।
सर्वथोपेक्षिताः = सब प्रकार से उपेक्षित।
दर्श दर्शम् = देख-देखकर।
दूयमान हृदयाः = दुःखी हृदय वाले।
तदानीन्तनाः = उस समय के।
व्यापकत्वं = व्यापक होना।
बोधयन्ति स्म = समझते थे।

https://www.evidyarthi.in/

प्रसंग
प्रस्तुत गद्यांश में पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतीयों की दीन दशा तथा उस दशा से उन्हें उबारने के लिए भारतीय सन्तों द्वारा किये जा रहे जन-जागरण आन्दोलन का वर्णन किया गया है।

अनुवाद
पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतीय लोगों का जीवन कष्टों से अत्यधिक दुःखी था। मुसलमान शासकों से देश आक्रान्त (पीड़ित) था, आपस में झगड़ते हुए भारतीय राजा दुःख और दीनता से ग्रसित थे, भारतीय लोग सभी तरह से उपेक्षित थे, विविध धर्म के अनुयायियों में शत्रुता बढ़ी हुई थी, भारतीय समाज जातियों और वर्गों में बँटा हुआ था इस प्रकार देश की दशा को देख-देखकर दुःखित हृदय वाले तत्कालीन महात्मा और सन्त ईश्वर ही शरण है ऐसा मानते हुए ईश्वर के प्रति समर्पित सन्त परमात्मा की व्यापकता और उसकी सर्वशक्तिमत्ता को समझाते थे।

(3) वस्तुतस्तु, तादृशा एव महापुरुषाः 'सन्त' शब्देन भारतीयजनमानसे समादृता अभवन्, ये परदुःखकातराः परहितरताः दुःखिजनसेवापरायणाः दलितान् शोषितान्प्रति सदयाः स्वसुखमविगणयन्तः यदृच्छालाभसन्तुष्टा आसन्।

शब्दार्थ-
वस्तुतस्तु = वास्तव में।
तादृशा एव = उस प्रकार के ही।
समादृताः = सम्मान प्राप्त।
परहितरताः = दूसरों की भलाई में लगे हुए।
सदयाः = दयालु।
अविगणयन्तः = न गिनते हुए, उपेक्षा करते हुए।
यदृच्छालाभः = इच्छानुसार जो प्राप्त हो जाए।

प्रसंग-प्रस्तुत गद्यांश में तत्कालीन भारतीय समाज में सन्तों की स्थिति का वर्णन किया गया है। | अनुवाद–वास्तव में भारतीय लोगों के मन में उसे प्रकार के महापुरुषों ने ही 'सन्त' शब्द से आदर प्राप्त किया, जो दूसरों के दुःखों, दूसरों की भलाई में लगे हुए, दुःखी लोगों की सेवा करने वाले, दलितों और शोषितों के प्रति दयावान्, अपने सुखों की परवाह न करके जैसा मिल गया, उस लाभ से सन्तुष्ट थे।'

(4) सत्पुरुषो महात्मा रविदासः स्वकर्मणि निरतः सन् परमात्मनो माहात्म्यमुपवर्णयन् दुःखितान् जनान्प्रति सदयहृदयः कर्मणः प्रतिष्ठां लोकेऽस्थापयत्। धर्मस्य बाह्याचारः एवं परस्परवैरस्य हेतुरिति स विश्वसिति स्म। अतो बाह्याचारान् परिहाय धर्माचरणं विधेयम्। गङ्गास्नानाच्छरीरशुद्धेरपेक्षया मनसा शुद्धिरावश्यकीति तेनोक्तम्। पूते तु मनसि काष्ठस्थाल्यामेव गङ्गेति तस्योक्ति प्रसिद्धैवास्ति।

शब्दार्थ-
निरतः सन् = लगे हुए।
माहात्म्यम् उपवर्णयन् = महत्त्व का वर्णन करते हुए।
लोकेऽस्थापयत् = लोक में स्थापित की।
विश्वसिति स्म = विश्वास करते थे।
परिहाय = छोड़कर।
विधेयम् = करना चाहिए।
गङ्गस्नानाच्छरीरशुद्धेरपेक्षया (गङ्गा + स्नानात् + शरीर + शुद्धेः + अपेक्षया) = गंगा में स्नान से शरीर की शुद्धि की

अपेक्षा।
पूते तु मनसि = मन पवित्र होने पर।
काष्ठस्थाल्यामेव (काष्ठः + स्थाल्याम् + एव) = काठ की थाली (कठौती) में ही।

प्रसंग
प्रस्तुत गद्यांश में रविदास के धर्म के बाह्यचारों के सम्बन्ध में व्यक्त विचारों का वर्णन • किया गया है।

अनुवाद
सत् पुरुष महात्मा रविदास ने अपने कर्म में लगे हुए रहकर परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए, दुःखी लोगों के प्रति दयालु हृदय होकर संसार में कर्म की प्रतिष्ठा स्थापित की। वे 'धर्म के बाहरी आचरण ही आपसी वैर के कारण ऐसा विश्वास करते थे। इसलिए बाहरी आचारे को छोड़कर धर्म का आचरण करना चाहिए। गंगा स्नान से शरीर की शुद्धि की अपेक्षा मन की शुद्धि आवश्यक है, ऐसा उन्होंने बतलाया। मन के पवित्र रहने पर कठौती में ही गंगा है, 'मन चंगा तो कठौती में गंगा', उनकी यह उक्ति ही प्रसिद्ध है।

(5) रविदासः कस्याञ्चिदपि पाठशालायां पठितुं न गतोऽतस्तस्य ज्ञानं पुस्तकीयं नासीत्। जगतो नश्वरत्वं परमात्मनोऽनश्वरत्वं व्यापकत्वमित्यादिदार्शनिकं ज्ञानं गुरोरनुकम्पया तेन लब्धं प्रेरणयैव तथाभूतस्य ज्ञानस्योपदेशो जनेभ्यस्तेन दत्तः।।

शब्दार्थ-
कस्याञ्चिदपि = किसी भी।
पुस्तकीयम् = पुस्तक सम्बन्धी।
नश्वरत्वम् = नाशवान् होने का भाव।
गुरोरनुकम्पया = गुरु की कृपा से।
तथाभूतस्य = उस प्रकार का।

प्रसंग
प्रस्तुत गद्यांश में रविदास द्वारा गुरु की कृपा से दार्शनिक ज्ञान अर्जित करने का वर्णन

अनुवाद
रविदास किसी भी पाठशाला में पढ़ने के लिए नहीं गये, इसलिए उनका ज्ञान पुस्तकीय नहीं था। उन्होंने संसार की नश्वरता, ईश्वर की नित्यता और व्यापकता आदि का दार्शनिक ज्ञान गुरु की कृपा से प्राप्त किया था। गुरु की प्रेरणा से ही उन्होंने लोगों को उस प्रकार के ज्ञान का उपदेश दिया।

(6) सः तपस्तप्तुं गहनं वनं न जगाम न वा गिरिगुहायमुपविश्य साधनरतः ज्ञानमधिगन्तुं चेष्टते स्म। वीतरागभयक्रोधोऽसौ जगति निवसन्नपि जगतः बन्धनात् पद्मपत्रमिव मुक्तः व्यवहरति स्म। स्वकर्मणि निरतः फलम्प्रति निराकाङ्क्षः स्वगृहेऽपि परमात्मा साक्षात्कर्तुं शक्यते इति रविदासः प्रत्येति। अतो विभिन्नोपासनास्थलेषु वनेषु रहसि वा ईश्वरानुसन्धानादपेक्षया स्वहृदये एवानुसन्धातुमुचितम्। ईश्वरप्राप्तावहङ्कार एवं बाधकोऽस्ति।'अहमिदं करोमि' ममेदमिति बोधः भ्रमात्मकः। भ्रममपहायैव ईश्वरप्राप्तिः सम्भवा। रविदासः स्वरचिते पद्ये गायति—यदा अहमस्मि तदा त्वं नासि, यदा त्वमसि तदा अहं नास्मि।

शब्दार्थ-
गिरिगुहायामुपविश्य = पर्वत की गुफा में बैठकर।
अधिगन्तुम् = प्राप्त करने के लिए।

https://www.evidyarthi.in/

चेष्टते स्म = प्रयत्न किया।
निविसन्नपि = निवास करते हुए भी।
पद्मपत्रमिव = कमल के पत्ते के समान।
व्यवहरति स्म = व्यवहार करते थे।
निरतः = लगे हुए।
निराकाङ्क्षः = इच्छारहित। प्रत्येति = विश्वास करते थे।
रहसि = एकान्त में।
ईश्वरानुसन्धानादपेक्षया = ईश्वर को खोजने की अपेक्षा।
अनुसन्धातुम् = खोजने के लिए।
ईश्वर-प्राप्तावहङ्कारः (ईश्वर + प्राप्तौ + अहङ्कारः) = ईश्वर की प्राप्ति में घमण्ड।
बोधः = ज्ञान। भ्रममपहायैव = भ्रम को छोड़कर ही। नासि (न + असि) = नहीं हो।

प्रसंग
प्रस्तुत गद्यांश में रविदास द्वारा ईश्वर-प्राप्ति के साधन रूप में ईश्वर को हृदय में खोजने और अहंकार को त्यागने पर बल दिया गया है।

अनुवाद
वे तपस्या करने के लिए घने जंगल में नहीं गये, न ही पर्वतों की गुफा में बैठकर साधना में लीन होकर ज्ञान को प्राप्त करने की चेष्टा की। राग, भय, क्रोध से रहित वे संसार में रहते हुए भी संसार के बन्धन से उसी प्रकार व्यवहार करते थे, जैसे कमल का पत्ता; अर्थात् जो जल में रहकर भी गीला नहीं होता है। अपने कर्म में लगे हुए फल के प्रति इच्छारहित होकर अपने घर में भी परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है, रविदास ऐसा विश्वास करते थे। इसलिए विभिन्न पूजा-स्थलों में, वन में या एकान्त में ईश्वर को खोजने की अपेक्षा अपने हृदय में ही खोजना उचित है। ईश्वर की प्राप्ति में अहंकार ही बाधक है। मैं यह करता हूँ, यह मेरा है, यह ज्ञान भ्रमपूर्ण है। भ्रम को छोड़कर ही ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। रविदास अपने रचित पद्य में गाते हैं-“जब मैं हूँ, तब तुम नहीं हो, जब तुम हो, तब मैं नहीं हूं।”

(7) रविदासः कबीरदासो नानकदेवप्रभृतयः सन्तो महात्मानः निर्गुणमेवेश्वरं गायन्ति स्म। परन्ते सगुणसम्प्रदायावलम्बिनः प्रति विद्वेषिणो नासन्। तैः रचितेषु पदेषु यत्र-तत्र भक्तिभावस्य तत्त्वमवलोक्यते। निराकारब्रह्मणः गहनभूते सुविस्तृते साक्षात्कारविचारनभसि विचरन्नपि रविदासः ।। पृथिवीतले विद्यमानतेषु दुःखितेषु, दरिद्रेषु दलितेषु च सुतरां रमते स्म।।

शब्दार्थ-
प्रभृतयः = आदि।
परं ते = किन्तु वे।
विद्वेषिणः = द्वेष रखने वाले। नासन् (न +आसन्) = नहीं थे।
तत्त्वमवलोक्यते = तत्त्व देखा जाता है।
गहनभूते = गम्भीर बने हुए में।
साक्षात्कार विचारनभसि = साक्षात्कार के विचार रूपी आकाश में
विचरन्नपि = विचरण करते हुए। भी।
रमते स्म = रमता था।

प्रसंग
रविदास निर्गुण ब्रह्म की उपासना के साथ-साथ दु:खी-दलितों के प्रति भी दयावान थे। इसी का वर्णन प्रस्तुत गद्यांश में किया गया है।

अनुवाद
रविदास, कबीरदास, नानक देव आदि सन्त-महात्मा निर्गुण ईश्वर का ही गान करते थे, परन्तु वे सगुण मत को मानने वालों के प्रति द्वेष नहीं रखते थे। उनके द्वारा बनाये गये पदों में यहाँ-वहाँ (स्थान-स्थान) पर भक्तिभावना का तत्त्व देखा जाता है।

निराकार ब्रह्म के घने, अत्यन्त विस्तृत साक्षात्कार के विचाररूपी आकाश में विचरण करते हुए भी रविदास पृथ्वी तल पर विद्यमान दु:खी, दरिद्र और दलितों में अत्यधिक रमण (घूमते अर्थात् प्रेम) करते थे; अर्थात् निर्गुण ब्रह्म के साधक होते हुए भी दीन-दुःखियों से उतना ही प्रेम करते थे, जितना परमात्मा से।।

(8) सः दलितेषु, दीनेषु, दरिद्रेष्वेवेश्वरमपश्यत्। तेषां सेवा, तान्प्रति सहानुभूतिः प्रेमप्रदर्शनं चेश्वरार्चनमिति तस्य विचारः। सामाजिकवैषम्यं न वास्तविकं प्रत्युत परमात्मना सर्वे समाना एव रचिताः, सर्वे च तस्येश्वरस्य सन्ततयोऽतः परस्परं बान्धवाः। मनुष्येषु तर्हि मिथः कथं वैरभावः? इत्थं समत्वस्य बन्धुतायाश्चोपदेशं जनेभ्योऽददात्। जातिवर्णसम्प्रदायादिभेदा अपि मनुष्यरचिताः परमात्मन इच्छाप्रतिकूलम्। इत्थं रविदासेन मनुष्यजातौ स्पृश्यास्पृश्यादिदोषाणामुच्चावचभेदानां चातीवतीव्रस्वरेण विरोधः कृतः। हरि भजति स हरेर्भवति। हरिभजने ने कश्चित्पृच्छति जातिं वर्णं वेति सत्यं प्रतिपादयन् देशस्याखण्डतायाः राष्ट्रस्यैक्यस्य च रक्षणे स प्रायतते। महात्मा रविदासोऽध्यात्म, भक्ति, सामाजिकाभ्युन्नतिं च युगपदेव संसाधयन् सप्तनवत्युत्तरपञ्चदशशततमे वैक्रमे राजस्थानप्रान्ते चित्तौडगढनाम्नि स्थाने षड्विंशत्युत्तरशतिमते वयसि परमात्मनि विलीनः यशःशरीरेणाद्यापि जीवतितराम्।। |

शब्दार्थ
दरिद्रेष्वेवेश्वरमपश्यत् (दरिद्रेषु + एव + ईश्वरम् + अपश्यत्) = दरिद्रों में ही ईश्वर को देखते थे।
चेश्वरार्चनमिति (च + ईश्वर + अर्चनम् + इति) = और ईश्वर की पूजा है, ऐसा।
वैषम्यम् = असमानता को।
इच्छा-प्रतिकूलम् = इच्छा के विपरीत।
इत्थं = इस प्रकार।
स्पृश्यास्पृश्यादिदोषाणां = छुआछूत इत्यादि दोषों का।
उच्चावच = ऊँचे-नीचे।
चातीवतीव्रस्वरेण (च + अतीव + तीव्र + स्वरेण) = और अधिक तीखे स्वर से।
कश्चित् पृच्छति = कोई पूछता है।
प्रतिपादयन् = प्रतिपादन करते हुए।
प्रायतत = प्रयत्न किया। युगपदेव = एक साथ ही।
संसाधयन् = सिद्ध करते हुए।
वयसि = अवस्था में।
शरीरेणाद्यापि = (शरीरेण + अद्य + अपि) शरीर से आज भी।
जीवतितराम् = जीवित हैं।

प्रसंग
प्रस्तुत गद्यांश में रविदास ने दोनों, दुःखियों, दरिद्रों और दलितों में ईश्वर के रूप को दर्शाया है।

https://www.evidyarthi.in/

अनुवाद
उन्होंने दलितों, दीनों और दरिद्रों में ईश्वर के दर्शन किये। उनकी सेवा, उनके प्रति सहानुभूति और प्रेम-प्रदर्शन ईश्वर की पूजा है, ऐसा उनका विचार था। सामाजिक असमानता वास्तविक नहीं है, अपितु ईश्वर ने सबको समान बनाया है और सब उस ईश्वर की सन्तान हैं; अतः आपस में भाई हैं। फिरे मनुष्यों में आपस में कैसी शत्रुता? इस प्रकार उन्होंने लोगों को समानता और बन्धुता का उपदेश दिया। जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि के भेद भी मनुष्य के बनाये हैं, परमात्मा की इच्छा के विपरीत हैं। इस प्रकार रविदास ने मनुष्य जाति में छुआछूत आदि दोषों का, ऊँच-नीच के भेदों का अत्यन्त जोरदार शब्दों में खण्डन किया। जो हरि को भजता है, वह हरि का होता है। हरि के भजने में कोई जाति या वर्ण को नहीं पूछता है-इस सत्य को बतलाते हुए देश की अखण्डता और राष्ट्र की एकता की रक्षा करने के लिए उन्होंने प्रयत्न किया। महात्मा रविदास अध्यात्म (आत्मा, परमात्मा का ज्ञान), भक्ति सामाजिक उन्नति को एक साथ ही सिद्ध करते हुए 1597 विक्रम संवत् में राजस्थान प्रान्त में चित्तौड़गढ़ नाम के स्थान पर 126 वर्ष की आयु में परमात्मा में विलीन हो गये, वे अपने यशः शरीर से आज भी जीवित हैं।